औद्योगीकरण, स्त्री दंश और विस्थापन का त्रिशंकु : बिदेसिया

डॉ. प्रियंका मिश्र,

दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी समाज की संस्कृति का परिचायक उस देश की भाषा होती है। यह अकारण नहीं है कि भारतेन्दु ने समग्र भारतवासियों को जागृति प्रदान करने के लिए कहा था –

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।'

उपर्युक्त पंक्ति भाषा के प्रति जो आदर और सम्मान का भाव प्रकट करती है, उसी भाव को भिखारी ठाकुर अपने समूचे रचना–कर्म में मशाल की तरह लेकर चलते थे। भाषा के प्रति उनका लगाव वास्तव में उनका अपने समय के प्रति लगाव है और यह लगाव कहीं न कहीं उन्हें अपने समाज से सम्पृक्त करता है। भिखारी ठाकुर ने भाषा और समाज इन दोनों को ही अपने रचना–संसार का प्रमुख विषय बनाया है। इनमें से अगर भाषा की तरफ ध्यान केन्द्रित किया जाए तो भोजपुरी भाषा की ओर उनका लगाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है, क्योंकि वह स्वयं भोजपुरिया थे। इसी कारण उनके गीतों और नाटकों में भोजपुरिया अन्दाज स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने स्वयं कहा–

इ हमार ह आपन बोली। सुनि केहु जन करे ठिठोली।

जे–जे भाव ह्रदय में भावे। उहे उतरि कलम पर आवे।

कबो संस्कृत कबहूँ हिन्दी। भोजपुरी भाषा के बिन्दी।

भोजपुरी हमार ह भाषा। जइसे हो जीवन के स्वासा।

इन पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है कि भिखारी ठाकुर अपनी भाषा से कितना प्रेम करते थे और यह प्रेम ही उन्हें उनके समाज से घनिष्ठ रूप से जोड़े रखता है। भिखारी का समाज से यह जुड़ाव केवल उन्हें यहीं तक सीमित नहीं रखता अपितु वह 'आम जनता' तक पहुँचा देता है। यह आम जनता और यह 'लघु मानव' ही भिखारी ठाकुर को उनके रचना–संसार में शिखर तक पहुँचाता है।

भिखारी ठाकुर का समूचा रचना–संसार साधारण जन की समस्याओं को मुखर करता है। उसमें भी 'स्त्री–दंश' की अभिव्यक्ति का अत्यन्त कारुणिक चित्रण भिखारी ठाकुर ने अपनी रचनाओं में किया है। उनका 'बिदेसिया' नाटक हो या 'गबरघिंचोर' या 'बेटी बेचवा' या फिर इनके दूसरे अन्य नाटक। सभी नाटकों में 'स्त्री–दंश' की अभिव्यक्त का स्वर प्रखर रूप से उभर कर आया है। बिदेसिया में 'प्यारी सुन्दरी' की पीड़ा तो 'गबरघिंचोर' में बेटे को माँ की सन्तान मानने पर विचार और 'बेटी बेचवा' में अमेल विवाह पर स्त्री की पीड़ा को वाणी दी है भिखारी ठाकुर ने।

इसके अतिरिक्त पुरुष समाज की भी विभिन्न समस्याओं को भिखारी ने अपने नाटकों में स्थान दिया है। 'बिदेसिया' का नायक घर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेश जाता है। घर से दूर जाने का दंश, अपनी मिट्टी से दूर

जाने के इस दंश और पीड़ा का जो वर्णन भिखारी ने किया है, ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है।

भिखारी ने अपने समाज में देखा था कि 'उदर–पूर्ति' के लिए मिट्टी से दूर जाना केवल 'भौगोलिक दूरी' नहीं थी बल्कि यह 'पारिवारिक दूरी' थी। ग्रामीण जीवन में जीने साधन तो पहले से ही नहीं थे वहीं औद्योगीकरण ने मनुष्य को रोजगार की तलाश में अपनी मिट्टी से कटने को बाध्य कर दिया। घर से दूर जाकर दूसरा घर बसा लेना कहीं न कहीं विस्थापन की अकथ गाथा है। पारिवारिक अलगाव की इस पीड़ा से भिखारी ठाकुर स्वयं भी गुजरे थे। उन्होंने स्वयं बहुत कम उम्र में विवाह किया था। विवाह के तुरन्त बाद ही उन्हें भी रोजगार के लिए बंगाल जाना पड़ा था। किन्तु कुछ समय बाद ही वह अपने गाँव लौट आए, क्योंकि वह जान गए थे कि अपनी मिट्टी और अपने लोगों के बिना उनका यह जीवन व्यर्थ है। घर से बाहर जाकर कमाने की ललक के शिकार स्वयं भिखारी भी हुए थे। इसलिए उनके नाटकों में विस्थापन और उसकी पीड़ा से उपजी स्थितियों का अनुभव उन्होंने स्वयं किया था। बिदेसिया के नायक का अनुभव और भिखारी के एकात्मकता होने के कारण बिदेसिया का एक–एक शब्द जीवित झाँकी प्रस्तुत करता है।

इन सबके बावजूद प्रश्न उठता है कि आखिर वे कौन–सी परिस्थितियाँ हैं, कि जिनके चलते स्वयं भिखारी और उनके जैसे अन्य लोगों को अपना देश छोड़कर पराए देश जाना पड़ा। इन कारणों की पड़ताल किए बिना भिखारी और उनके नाटक 'बिदेसिया' को समझना 'अधूरी समझ' ही कहलाएगा। भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसम्बर, 1887 को बिहार के सारन जिले के कुतुबपुर (दियारा) गाअव में एक नाई परिवार में हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो यह वह समय है जब भारत का प्रथम 'स्वाधीनता संग्राम' असफल हो गया था और भारत अभी भी अँग्रेजों का उपनिवेश था।

अँग्रेजी हुकूमत के दौरान भारत के कई राज्य छोटे–छोटे सामन्तों से संचालित थे। भोजपुर इलाका भी इसी तरह सामन्ती प्रवृत्तियों से ही संचालित था। इस इलाके के कुछ क्षत्रियों ने अँग्रेजों को पानी पिला रखा था। इन देसी रजवाड़ी क्षत्रियों ने अँग्रेजों से लोहा तो लिया किन्तु इनकी दृष्टि आम जनता के प्रति नरम नहीं थी। साधारण जनता एक ओर तो फिरंगियों से पीड़ित थी दूसरी ओर सामन्ती प्रवृत्ति वाले क्षत्रियों ने भी भोजपुरवासियों की नाक में दम कर रखा था। साधारण जनता दोहरी मार से पीड़ित थी, जिससे वो अत्यन्त निर्धन हो गई थी। निर्धनता इस कदर बढ़ गई थी कि 'पेट पालने की समस्या' तक बढ़ गई।

भिखारी का ध्यान पेट की इसी समस्या की ओर जाता है जिसके चलते भोजपुर की उस समय की जनता पलायन का रास्ता चुनती है। देश ने 1947 में विभाजन और विस्थापन देखा, पर भिखारी ठाकुर ने 1940 के आसपास अपने नाटक बिदेसिया के माध्यम से बिहार के गाँवों से रोजी–रोजगार के लिए विस्थापित होने वाले लोगों की पीड़ा और संघर्षों को स्वर दिया।

ऐसा समाज जिसकी हालत ये थी कि दो वक्त की रोटी दो दिन बाद नसीब हो, उसके पास पलायन के अतिरिक्त और क्या रास्ता था! भोजपुरी समाज ने भी इसी पलायन को चुना। इस पलायन से जिस पीड़ा और टीस ने जन्म लिया उसकी परिणति भावोद्रेक से बिदेसिया में हुई। भोजपुरी इलाका कृषि–प्रधान इलाका है। जब देसी सामन्तों और अँग्रेजों ने इस पर भी अपना अधिकार कर लिया तो इस प्रदेश के लोगों ने दूसरे देश की ओर रुख किया। जब ये लोग अपना देश छोड़कर दूसरे देश जाते तो अपना देश, गाँव पीछे छूट जाता और इसके साथ ही छूट जाता इनका परिवार, इनके बच्चे और इनकी

स्त्रियाँ। बिदेसिया पीछे छूटी इसी स्त्री की 'व्यथा गाथा' है। महेन्द्र मिश्र लिखित ये पंक्तियाँ इस बात का प्रबल प्रमाण हैं –

पनिया के जहाज से पलटनिया बनी अइह पिया
ले ले अइह हो पियवा सेनुरा हो बंगाल के।

(साभार–समकालीन
रंगकर्म–मृत्युंजय प्रभाकर, पृ. 102)

इस तरह की विनती भोजपुरी महिलाए¡ अपने बिदेस गए पति के लिए किया करती थीं। मृत्युंजय प्रभाकर के शब्दों में – ''...लौटते पति से और खासकर बंगाल से सेनुर (सिन्दूर), जिसका अर्थ हिन्दी प्रदेशों में सीधे–सीधे सुहाग चिह्न से है, लेते आने की माँग महिलाओं द्वारा करना कई अर्थों को व्यंजित करता है। इसका साधारण अर्थ तो सिन्दूर पदार्थ से है लेकिन विशेष अर्थ उनकी सही–सलामत वापसी की है...। इसका तीसरा अर्थ भी ध्वनित होता है। वह है अपने पति को उसी रूप में वापस पाने की गुजारिश जिस रूप में वह वहाँ गया है। मतलब यह कि वह उसका सुहाग है और सिर्फ उसका है, किसी दूसरी स्त्री के सम्पर्क से वह दूर रहे और अपने पुरुषत्व को अपनी पत्नी के लिए बचाकर रखे।'' **(समकालीन रंगकर्म–मृत्युंजय प्रभाकर, पृ. 102)** ये पंक्तियाँ निश्चय ही पाठक के हृदय को झकझोरती हैं कि ये स्त्रियाँ बिदेस गए पति के विरह में और साथ ही उसकी सलामती के लिए कितनी व्याकुल हैं। बिदेसिया नाटक की रचना इसी कथा के ताने–बाने को लेकर हुई है।

भिखारी ठाकुर ने बिदेसिया शैली का प्रयोग 'सामूहिक त्रासदी' की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए किया था। यह सामूहिक त्रासदी 'औद्योगीकरण' के कोख से पैदा हुई थी। जिसने पुरुबियों का ताना–बाना छिन्न–भिन्न कर दिया था। इतिहास गवाह है कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना के साथ ही भोजपुरी क्षेत्र के मजदूरों का पलायन कलकत्ता (अब कोलकाता), असम ही नहीं वरन् फिजी, मॉरीशस, ट्रिनिडॉड, सुरीनाम आदि अन्य उपनिवेशों में हुआ। या तो ज्यादा कमाने के लालच में पुरुबिया वासी वहाँ चले जाते थे या फिर अंग्रेज सरकार ने जबरन उन्हें वहाँ भेज दिया और वे कभी बीमारी तो कभी किन्हीं और कारणों से वापस नहीं लौट पाते थे।

भोजपुरी प्रदेश के लिए कलकत्ता महज एक शहर का नाम नहीं है बल्कि विरह का एक ऐसा सैलाब है, जिसमें हजारों–हजार आँखों का काजल बह चुका है। इन प्रदेशों के नौजवान रोजगार और खुशी की तलाश में कलकत्ता और असम में शरण पाते थे। बहुधा वे लौटकर नहीं आते थे, क्योंकि लौटने लायक उनकी स्थिति ही नहीं बन पाती थी और अगर लौटते भी थे तो खुशहाली के बदले तंगहाली लेकर। अकारण नहीं कि भोजपुरी प्रदेशों की औरतों के लिए कलकत्ता किसी सौत से कम नहीं था। उत्तर प्रदेश और बिहार के गाँवों की औरतों में आज भी यह अन्धविश्वास व्याप्त है कि बंगाल और असम की औरतें उनके मर्दों को जादू से तोता और भेड़ा बनाकर रख लेती हैं। भिखारी ठाकुर की निम्नलिखित पंक्तियों में इस विश्वास को देखा जा सकता है –

मोर पिया मत जो हो पुरुबवा
पुरब देस में टोना बसल बा, पानी बड़ा कमजोर
मोर पिया मत जो हो पुरुबवा।

औद्योगीकरण की आँधी में उड़कर पुरुष के प्रदेश जाने पर नारियों को ही पीड़ा होती थी। इसीलिए भोजपुरी गीतों और नाटकों में औद्योगीकरण के खिलाफ भी आक्रोश दिखाई देता है। दिलचस्प है कि नारियों ने ही औद्योगीकरण का विरोध सबसे अधिक किया। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

कलवा के पानी पीके भइलन पियवा करिया
एइसन कल में डाढ़ा लागो ना...।

अर्थात् नलके का पानी पी के मेरे पिया काले हो गए हैं इसलिए यह कल (पूरब के लोग नलके के पानी को कल का पानी ही कहते हैं) ही नष्ट हो जाए। भिखारी ठाकुर ने स्त्री की इसी आवाज को, इस हालात को अपनी लेखनी में स्वर दिया और इसका जीवन्त दस्तावेज बना दिया बिदेसिया। भिखारी ठाकुर ने अपने प्रतिनिधि नाटक बिदेसिया में नायिका प्यारी सुन्दरी के माध्यम से उस समय के उन तमाम विरहिणी नायिकाओं की मनोदशा का चित्रण किया है जिनके स्वामी रोजी–रोटी की तलाश में बिदेस गए हैं। इसके साथ ही ठाकुर ने अन्य पात्रों के संवाद के माध्यम से उन नारियों और उनके परिवेश के प्रति समाज को भी एक नवीन नजरिया दिया है।

प्यारी पत्नी का पति गवना कराके उसे अपने घर ले आता है और स्वयं एक दिन चुपके से नौकरी की तलाश में कलकत्ता चला जाता है। वहाँ उसे नौकरी मिल जाती है। वहीं उसकी मुलाकात एक औरत से होती है। धीरे–धीरे यह मुलाकात प्रेम में बदल जाती है और दोनों पति–पत्नी बनकर रहने लगते हैं। प्यारी का पति प्यारी को एकदम भूल जाता है। अब यही औरत उसकी जिन्दगी बन जाती है।

प्यारी का पति तो उसे भूल जाता है पर प्यारी अपने पति को कैसे भूल सकती है। उसका सबकुछ तो उसका पति ही है। अनेक प्रलोभनों को भुलाकर वह 12 वर्षों तक अपने पति का इन्तजार करती है, किन्तु उसका पति लौटकर नहीं आता है। प्यारी तो अपने पति का पता ठिकाना भी नहीं जानती। प्रतीक्षा के अतिरिक्त उसके पास और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। वह अपने पति के विरह की आग में जल रही है। विरह की इस पीड़ा का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण भिखारी ठाकुर करते हैं –

अमवा मोजरी गइले, लगले टिकोरवा

दिन पर दिन पियरात रे बिदेसिया।

एक दिन बही जइहे जुलुमा बेयरिया

डार–पात जइहें भहराई रे बिदेसिया।

(अर्थात् आम में मंजर लग चुके हैं और अब तो टिकोले भी लग चुके हैं। डर है कि एक दिन जुल्मी बयार बह जाएगी और डार–सहित पेड़ गिर जाएगा।) स्त्री–मन का इतना सूक्ष्म चित्रण पुरुष लेखक के द्वारा इसे भिखारी ठाकुर ही सम्भव कर सकते थे।

प्यार की इस मनोदशा की खबर अब तक उसके पति को नहीं हुई है। प्यारी अत्यन्त व्याकुल है कि तभी उसे एक बटोही दिखाई पड़ता है। वह उसके पास जाती है और बटोही के गन्तव्य के बारे में पूछती है। वहीं उसे जानकारी मिलती है कि बटोही कलकत्ता जा रहा है। प्यारी तुरन्त बटोही से अपने मन का हाल कहती है और बिनती करती है कि उसका सन्देसा उसके पति तक पहुँचा दे। बटोही उससे उसके पति का नाम पूछता है किन्तु भारतीय परम्परा और लाजवश वह अपने पति का नाम नहीं उसकी सांकेतिक पहचान बताती है। यथा –

हमरो बलमू जी के बड़े–बड़े अँखियाँ

चोखे–चोखे हउवै नैनाकोर रे बटोहिया।

ओठवा ते हवे जइसे कतरल पनवा

नकलवा सुगनवा के ठोर से बिदेसिया।

अन्ततः बटोही 'बिदेसिया' को ढूँढ़ निकालने में सफल होता है। वह उसे फटकारता है और समझा–बुझाकर प्यार की व्यथा–कथा बयान कर उसे उसकी गलती का अहसास करवाता है। यह बात उसकी दूसरी पत्नी को स्वीकार नहीं होती हे और तरह–तरह के जाल बुनती है। किन्तु वह उसकी बात नहीं मानता और स्वदेश वापस लौटता है। कुछ दिनों बाद नायक की दूसरी पत्नी भी गाँव आ जाती है और अत्यन्त नाटकीय परिस्थितियों में तीनों खुशी–खुशी साथ रहने लगते हैं।

संक्षेप में कहें तो 'बिदेसिया' भिखारी ठाकुर का सशक्त नाटक है जिसमें उन्होंने स्त्री–जीवन के ऐसे प्रसंगों को अभिव्यक्ति के लिए चुना, जिन प्रसंगों में उपजने वाली पीड़ा आज भी हमारे समाज में जीवित है। जिस समय देश स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहा था उस समय भिखारी ठाकुर स्त्री स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे थे। भिखारी ठाकुर का पूरा रचनात्मक संसार लोकोन्मुख है। उनकी यह लोकोन्मुखता हमारी भाव–सम्पदा को और जीवन के संघर्ष और दुःख से उपजी पीड़ा को एक सन्तुलन के साथ प्रस्तुत करती है। वे एक तरह से दुःख और उससे उपजी पीड़ा का उत्सव मनाते दिखते हैं। वे ट्रेजेडी को कॉमेडी बनाए बिना कॉमेडी के स्तर पर जाकर प्रस्तुत करते हैं। इसलिए कोई उन्हें 'भरतमुनि की परम्परा का पहला नाटककार' मानता है तो कोई 'भोजपुरी का भारतेन्दु'। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने तो उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपियर' की उपाधि दे दी। इतना सम्मान मिलने पर भी भिखारी गर्व से फूले नहीं, उन्होंने बस अपना नाटककार जिन्दा रखा। पूर्वांचल आज भी भिखारी के नाटकों से गुलजार है।

संदर्भ

1. लोक साहित्य, डॉ. द्विजराम यादव, शिल्पी प्रकाषन, इलाहाबाद, 1996
2. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक), सं. बद्रीनारायण, 1958
3. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, संस्करण 1992
4. भारत के लोकनाट्य, शिवकुमार माथुर, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

Copyright © 2018, Dr. Priyanka Mishra. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.